एकेश्वरवाद की वास्तविकता व अपेक्षाएं

[**हिन्दी** – Hindi – هندي]

साइट इस्लाम धर्म

संशोधनः अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह

2014 - 1435

IslamHouse.com

حقيقة التوحيد ومقتضاه

« باللغة الهندية »

موقع دين الإسلام

مراجعة: عطاء الرحمن ضياء الله

2014 - 1435

IslamHouse.com

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَٰنِ الرَّحِيمِ

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

मैं अति मेहरबान और दयालु अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ।

إن الحمد لله نحمده ونستعينه ونستغفره، ونعوذ بالله من شرور أنفسنا، وسيئات أعمالنا، من يهده الله فلا مضل له، ومن يضلل فلا هادي له، وبعد:

हर प्रकार की हम्द व सना (प्रशंसा और गुणगान) केवल अल्लाह के लिए योग्य है, हम उसी की प्रशंसा करते हैं, उसी से मदद मांगते और उसी से क्षमा याचना करते हैं, तथा हम अपने नफ्स की बुराई और अपने बुरे कामों से अल्लाह की पनाह में आते हैं, जिसे अल्लाह तआला हिदायत प्रदान कर दे उसे कोई पथभ्रष्ट (गुमराह) करने वाला नहीं, और जिसे गुमराह कर दे उसे कोई हिदायत देने वाला नहीं। हम्द व सना के बाद :

एकेश्वरवाद की वास्तविकता व अपेक्षाएं और मानव-जीवन पर उसके प्रभाव

मनुष्य की प्रकृति व प्रवृति और उसका अंतःकरण किसी परा-लौकिक (□□□□□□) शक्ति से उसके मानसिक, भावनात्मक एवं व्यावहारिक संबंध की मांग करता है। उसी शक्ति को इन्सान चेतन व ज्ञान के स्तर पर ईश्वर, अल्लाह, ख़ुदा, गॉड आदि कहता है। यहां तक कि विश्व के कुछ भागों, जैसे अफ्रीक़ा व भारत के कुछ क्षेत्रों में कुछ असभ्य वनवासी आदिम जनजातियों (□□□□□□□□□ □□□□□□) में भी ईश्वर की एक धुंधली, अस्पष्ट परिकल्पना पाई जाती है। ज्ञात मानव-इतिहास में (वर्तमान काल के कुछ नास्तिकों को छोड़कर) अनेश्वरवादी लोग कभी नहीं रहे। यही तथ्य परालौकिक शक्ति धर्म का मूलतत्व और

धार्मिक मान्यताओं का मूल केन्द्र रहा है, और यही 'ईश्वर में विश्वास' अर्थात् 'ईश्वरवाद' शाश्वत सत्य धर्म का मूलाधार रहा है।

एकेश्वरवाद (तौहीद) की वास्तविकता

'एक ईश्वर है और मनुष्य के जीवन से उसका अपरिहार्य (नागुज़ीर, □□□□□□□□□□) संबंध है' यह धारणा अगर विश्वास बन जाए तो मनुष्य और उसके जीवन पर बहुत गहरा, व्यापक और जीवंत व जीवन-पर्यंत सकारात्मक प्रभाव डालती है। लेकिन यह उसी समय संभव होता है जब एकेश्वरवाद की वास्तविकता भी भली-भांति मालूम हो तथा उसकी अपेक्षाएं (तक़ाज़े) अधिकाधिक पूरी की जाएं। वरना ऐसा हो सकता है और व्यावहारिक स्तर पर ऐसा होता भी है कि एक व्यक्ति 'एक' ईश्वर को मानते हुए भी

जानते-बूझते या अनजाने में (एकेश्वरवादी होते हुए भी) अनेकेश्वरवादी (मुशरिक) बन जाता, तथा एकेश्वरवाद के फ़ायदों और सकारात्मक प्रभावों से वंचित रह जाता है। मानवजाति के इतिहास में यह एक बहुत बड़ी गंभीर और जघन्य विडंबना रही है कि लोग और क़ौमें 'एकेश्वर' की धारणा रखते हुए भी अनेकेश्वरवाद या बहुदेववाद (शिर्क) से ग्रस्त होती रही हैं। यह अनेकेश्वरवाद क्या है, इसे समझ लेना एकेश्वरवाद की वास्तविकता को समझने के लिए अनिवार्य है।

एकेश्वरवाद की विरोधोक्ति

ईश्वर से संबंध सामान्यतः उसकी पूजा-उपासना तक सीमित माना जाता है। चूंकि ईश्वर अदृश्य (□□□□□□□□□□)

होता है, निराकार होता है, इसलिए पूजा-उपासना में उस पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए उसके प्रतीक स्वरूप कुछ भौतिक प्रतिमाएं बना ली जाती हैं। फिर ये प्रतिमाएं ईश्वर का प्रतिनिधित्व करती मान ली जाती हैं। यहीं से अनेकेश्वरवाद का आरंभ हो जाता है। 'प्रतीक' ही 'अस्ल' हो जाते हैं और ईश्वर के ईश्वरत्व में शरीक-साझीदार बनकर स्वयं पूज्य-उपास्य बन जाते हैं। एकेश्वरवाद परिवर्तित व विकृत होकर 'नियमवत् अनेकेश्वरवाद' का रूप धारण कर लेता है। सत्य-पथ से, इस ज़रा-से फिसलने और विचलित होने के बाद, फिर क़दम ठहरते नहीं, और आदमी को न कहीं क़रार मिलता है न संतोष व संतुष्टि। अतः धर्मों और धर्मावलंबियों का इतिहास साक्षी है कि नबी, रसूल, ऋषि, मुनि, महापुरुष, पीर,

औलिया सब पूज्य-उपास्य बना लिए जाते रहे हैं। फिर इन्सानी क़दम और अधिक फिसलते, विचलित व पथभ्रष्ट होते हैं और इन्सान सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों, तारागण, अग्नि को, फिर प्रेतात्माओं, ज़िन्दा या मुर्दा इन्सानों, समाज सुधारकों, क्रांतिकारी विभूतियों, माता-पिता, गुरुओं आदि को और फिर इससे भी आगे—वृक्षों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, यहां तक कि सांप की भी पूजा होने लगती है। फिर जन्मभूमि, राष्ट्र, धन-दौलत, पुरुष-शरीर-अंग तथा कारखानों में काम करने वाले औज़ार भी पूजे जाने लगते हैं। अनेकेश्वर पूजा व अनेश्वर पूजा कहीं ठहरती नहीं और नित नए-नए पूज्यों की वृद्धि होती रहती है। इस प्रकार एकेश्वरवाद का वह भव्य दर्पण जिसमें मनुष्य अपने और ईश्वर के बीच यथार्थ संबंध का प्रारूप स्वच्छ रूप में देख

सकता और उसी के अनुकूल एक सत्यनिष्ठ, न्यायनिष्ठ, उत्तम, शांतिमय तथा ईशपरायण व्यक्तिगत, सामाजिक व सामूहिक जीवन व्यतीत कर सकता था, चकनाचूर होकर रह गया। 'एक ईश्वर' के बजाए बहुसंख्य अनेकेश्वरों के आगे शीश नवाते-नवाते मनुष्य (जो ब्रह्माण्ड की तमाम सृष्टियों से श्रेष्ठ, महान, और उत्कृष्ट व अनुपम था) की गरिमा और उसका गौरव टूट-फूटकर, चकनाचूर होकर रह गया। इन्सान के अन्दर, समाज के अन्दर तथा सामूहिक व्यवस्था में ऐसी जो छोटी-बड़ी अनेक ख़राबियां पाई जाती हैं जिनके सुधार की कोई भी कोशिश कामयाब नहीं हो पाती, उनके प्रत्यक्ष कारण व कारक जो भी हों, सच यह है कि परोक्षतः उनकी जड़ में अनेकेश्वरवाद (या अनेश्वरवाद), मूल कारक के तौर पर काम करता रहता है।

यहीं से मानवीय मूल्यों की महत्वहीनता, मानव-चरित्र का पतन तथा मानव-सम्मान के विघटन व बिखराव की उत्पत्ति होती है। मानवजाति पर छाई हुई इस त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सही विकल्प तलाश किया जाए। संजीदगी और सत्यनिष्ठा के साथ ग़ौर करने पर यह विकल्प 'विशुद्ध एकेश्वरवाद' के रूप में सामने आता है।

विशुद्ध एकेश्वरवाद (तौहीदे ख़ालिस)

इन्सान की मूल प्रवृति उसे अशुद्ध, भ्रमित, मिलावटी, खोटी और प्रदूषित वस्तुओं के बजाए, विशुद्ध (□□□□) और खरी चीज़ें हासिल करने तथा इसके लिए प्रयासरत होने का इच्छुक व प्रयत्नशील बनाती है। मनुष्य जब अपनी भौतिक व शारीरिक जीवन-सामग्री के प्रति इस दिशा में

भरसक प्रयत्न करता है तो उसे आत्मिक व आध्यात्मिक जीवन-क्षेत्र में 'विशुद्ध' की प्राप्ति के लिए और अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए, क्योंकि यही वह आयाम है जो मनुष्य को सृष्टि के अन्य जीवों से श्रेष्ठ व महान बनाता है। जिन सौभाग्यशाली लोगों को भौतिकता-ग्रस्त जीवन प्रणाली की चकाचौंध, हंगामों, भाग-दौड़ और आपाधापी से कुछ अलग होकर इस दिशा में प्रयासरत होने की फिक्र होती है, अक्सर ऐसा हुआ है कि वे अनेक व विभिन्न दर्शनों में उलझ कर, एक मानसिक व बौद्धिक चक्रव्यूह में खोकर, भटक कर रह जाते हैं। अगर यह तथ्य और शाश्वत सत्य सामने रहे कि अत्यंत दयावान ईश्वर अपने बन्दों को दिशाहीनता व भटकाव की ऐसी परिस्थिति में बेसहारा व बेबस नहीं छोड़ सकता और उसने ईशदूतों व

ईशवाणी (ईश-ग्रंथ) के माध्यम से इन्सानों की इस महत्वपूर्ण व बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयोजन व प्रबंध अवश्यावश्य किया होगा तो एकेश्वरवाद की उलझी हुई डोर का सिरा—विशुद्ध एकेश्वरवाद—इन्सान के हाथ लग सकता है। यह मात्र एक कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इतिहास के हर चरण में और वर्तमान युग में भी, इन्सानों को ''ईशदूत तथा ईश-ग्रंथ'' के माध्यम से इस अभीष्ट (□□□□□□□□□) 'विशुद्ध एकेश्वरवाद' का ज्ञान तथा इसकी अनुभूति व प्राप्ति होती रही है। इसे अलग-अलग युगों, भूखंडों, क़ौमों और भाषाओं में जो कुछ भी अलग-अलग नाम दिए गए हों, यह वर्तमान युग में (पिछले १४०० वर्षों से) 'इस्लाम' के नाम से जाना जाता है।

विशुद्ध एकेश्वरवाद और इस्लाम

इस्लाम, विशुद्ध एकेश्वरवाद की व्याख्या को उलझाव, भ्रामकता, अस्पष्टता, अपारदर्शिता से बचाने के लिए, इसे दार्शनिकों, विद्वानों, धर्माचार्यों, स्कॉलर्स और उलमा के सुपुर्द नहीं करता। यहां मूल रूप से स्वयं ईश्वर ने ही अपने ग्रंथ (क़ुरआन) में, जो कि ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) पर सन् ६१० ई॰ से ६३२ ई॰ की अवधि में अवतरित हुआ, विशुद्ध एकेश्वरवाद की व्याख्या कर दी है। क़ुरआन का अधिकांश भाग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ऐसी ही शिक्षाओं से भरा हुआ है। यहां ऐसी सिर्फ़ दो व्याख्याओं के भावार्थ का अनुवाद दिया जा रहा है—

- "... वह अल्लाह एक, यकता है।१ अल्लाह स्वाधरित व स्वाश्रित है।२ वह न जनिता है, न

जन्य।३ और कोई उसके समान, समकक्ष नहीं।४'' (क़ुरआन, ११२:१-४)

- ''अल्लाह वह जीवंत शाश्वत सत्ता है जो संपूर्ण जगत को संभाले हुए है।५ उसके सिवा कोई पूज्य-उपास्य (इलाह) नहीं है। वह न सोता है न उसे ऊंघ लगती है।६ ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है, उसी का है। कौन है जो उसके सामने उसकी अनुमति के बिना (किसी की) सिफारिश कर सके?७ जो कुछ इन्सानों के सामने है उसे और जो कुछ उनसे ओझल है उसे भी वह ख़ूब जानता है और वे उसके (अपार व असीम) ज्ञान में से किसी चीज़ पर हावी नहीं हो सकते सिवाय उस (ज्ञान) के जिसे वह ख़ुद (इन्सानों को) देना

चाहे। उसकी कुर्सी आकाशों और धरती को समोए हुए है। और उन की देख-रेख व सुरक्षा का काम उसके लिए कुछ भी भारी, कठिन नहीं। बस वही एक महान और सर्वोपरि सत्ता है।'' (क़ुरआन, २:२५५)

क़ुरआन की उपर्युक्त आयतों में विशुद्ध एकेश्वरवाद का जो संक्षिप्त चित्रण किया गया है, यद्यपि पूरे क़ुरआन में जगह-जगह उसे विस्तार के साथ, उदाहरणों, तर्क तथा सबूत व प्रमाण [जो मनुष्य के अपने अस्तित्व—'अन्फुस'—और ब्रह्माण्ड—'आफाक़'—में फैले हुए हैं (४१:५३)] के साथ वर्णित किया गया है, फिर भी, उपर्युक्त संक्षिप्त व्याख्या भी बुद्धिवानों तथा विवेकशीलों के लिए अनेकेश्वरवाद की तुलना में, या भ्रमित व अस्पष्ट

एकेश्वरवाद के परिदृश्य में 'विशुद्ध एकेश्वरवाद' की साफ़-सुथरी, स्पष्ट तथा सरल, सहज व पारदर्शी (□□□□□□□□□□□□) तस्वीर पेश करती है। इस तस्वीर को देखकर कोई भी सत्यनिष्ठ और पूर्वाग्रहरहित इन्सान, एकेश्वरवाद की वास्तविकता पा जाने से वंचित या असमर्थ नहीं रह सकता।

संदर्भ

1. *अर्थात् वह 'अनेक' नहीं है। शक्ति, सामर्थ्य, क्षमताओं और गुणों की जितनी भी अनेकताएं हैं, वह सब मिलकर, एक होकर, उस 'एक ईश्वर' में समाई हुई हैं।*
2. *अर्थात् वह किसी पर आश्रित व आधारित नहीं, किसी का मुहताज नहीं कि ब्रह्माण्ड के सृजन,*

संचालन व प्रबंधन में उसे किसी और की साझीदारी, सहयोग व सहायता की आवश्यकता हो।

3. *अर्थात् न उसकी कोई संतान है न वह किसी की संतान है।*

4. *अर्थात् वह अपने आप में संपूर्ण, बेमिसाल (□□□□□□) है।*

5. *संपूर्ण ब्रह्माण्ड को संभालने में वह कुछ अन्य विभूतियों (देवताओं, देवियों, गॉड आदि) पर निर्भर नहीं है।*

6. *अर्थात् वह नींद, ऊंघ (और भूख-प्यास आदि) आवश्यकताओं व कमज़ोरियों से परे और उच्च है।*

7. *अर्थात् उस तक पहुंचने, उसकी प्रसन्नता व क्षमाकारिता पाने के लिए, उसके प्रकोप से बचने के लिए (सांसारिक सत्ताधारियों के दरबार में अन्य लोगों की सिफारिश की तरह) किसी की सिफारिश काम नहीं आती। परलोक-जीवन में भी नहीं, सिवाय उस व्यक्ति (अथवा नबी, रसूल) के जिसे स्वयं ईश्वर किसी के हक़ में सिफारिश करने की अनुमति दे।*

ईश्वर के गुण

ईश्वर के गुणों के संबंध में दार्शनिकों और धर्मविद्वानों (□□□□□□□□□□□□) ने अपने मस्तिष्क को काफी थकाया है। अपने स्वतंत्र व स्वच्छंद चिंतन-मनन से (अथवा ईश्वरीय मार्गदर्शन से निस्पृह या विमुक्त होकर) वे जब ध्यान-ज्ञान

की प्रक्रिया से गुज़रे तो इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ईश्वर गुणहीन है, अर्थात् 'निर्गुण' है। इस निष्कर्ष से यह बात अवश्यंभावी हो जाती है कि 'ईश्वर वास्तव में एक निष्क्रिय (□□□□, □□□□□, □□□-□□□□□□) अस्तित्व है।' इस विचारधारा के अनुसार ईश्वर और सृष्टि (□□□ □□□□□□□□□) मुख्यतः 'मानव'—के बीच किसी जीवंत संबंध की परिकल्पना विलीन और समाप्त हो जाती है। फिर मनुष्य, ईश्वर से पूरी तरह कटकर रह जाता है तथा समाज व सामूहिक व्यवस्था की भी ऐसी ही स्थिति हो जाती है। मानवता तथा मानवजाति को बड़े-बड़े आघात और नैतिक व आध्यात्मिक क्षति इसी कारण पहुंची है, क्योंकि ईश्वर और मनुष्यों के बीच चेतना के स्तर पर संबंध-विच्छेद 'मानविक' नहीं अपितु 'पाश्विक' है (पशुओं का ईश्वर से

संबंध उनकी चेतना के स्तर पर नहीं, मात्र भौतिक व शारीरिक स्तर पर होता है)।

इस्लाम की 'विशुद्ध एकेश्वरवाद' की अवधारणा ने उपर्युक्त, सदियों की बिगड़ी हुई विचारधारा का शुद्धिकरण करके गुणवान ईश्वर की परिकल्पना को इस प्रकार से पुनर्स्थापित किया कि इन्सान का ईश्वर से टूटा हुआ या खोया हुआ रिश्ता फिर से क़ायम हो गया। यहां ईश्वर अपने गुणों और सामर्थ्य के साथ, हर पल, हर अवस्था में, हर जगह, अपने बन्दों के साथ है। ईश्वर अद्वितीय है अर्थात किसी भी प्रकार के शिर्क से परे। वह मनुष्यों (तथा अन्य सभी प्राणियों) के प्रति दयावान, कृपाशील है। वह बुरे कामों पर क्रोधित होता और नेक कामों पर प्रसन्न होता है। वह स्वामित्व वाला प्रभुत्व वाला है अतः

मात्र उसी के प्रति दासताभाव व आज्ञापालन में जीवन बिताना चाहिए। वह न्यायप्रिय है अतः मनुष्यों को न्यायप्रिय, न्यायी व न्यायनिष्ठ होना चाहिए। वह न्यायप्रद है अतः जिन लोगों के साथ इस सीमित जीवन और त्रुटिपूर्ण सांसारिक न्याय-क़ानून-व्यवस्था में पूरा न्याय (या आधा-अधूरा न्याय या कुछ भी न्याय) नहीं मिल सका उन्हें वह परलोक में न्याय प्रदान कर देगा। वह इन्सानों के हर छोटे-बड़े काम, हर गतिविधि हर क्रिया-कलाप का निगरां व निरीक्षक है अतः कोई इन्सान अपने बुरे कामों के दुष्परिणाम (नरक) से ईश्वर के समक्ष परलोक में बच न सकेगा, न सद्कर्मों के पुरस्कार (स्वर्ग) से वंचित रहेगा। वह हर चीज़ का जानने वाला, हर बात की पूरी ख़बर रखने वाला है अतः उसकी पकड़ तथा

उसके सामने उत्तरदायित्व से परलोक में कोई भी व्यक्ति बच न सकेगा। वह अकेला पूज्य-उपास्य है अतः वह 'शिर्क' को बर्दाश्त नहीं करेगा और परलोक में दंड देगा। वह सर्वसामर्थ्यवान, सर्वसक्षम है अतः कोई दूसरा उसके कामों, फ़ैसलों और अधिकारों में उसका साझीदार नहीं...इत्यादि।

इस प्रकार, ईश्वर के अनेक गुणों के साथ इस्लाम की 'एकेश्वरवाद' की धारणा इन्सानी ज़िन्दगी और मानव-समाज को नेकी, नैतिकता, सत्यनिष्ठा, न्याय, उत्सर्ग, परोपकार, निःस्वार्थता, अनुशासन और उत्तरदायित्व-भाव के आधार पर निर्मित व सुनियोजित करने में महत्वपूर्ण व प्रभावी भूमिका निभाती है।

ईश्वर के अधिकार, एकेश्वरवाद की अपेक्षाएं

इस्लाम में एकेश्वरवाद की धारणा के साथ ईश्वर के प्रति इन्सानों के कर्तव्य, अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। यह कर्तव्यपरायणता ईश्वर और इन्सान के बीच एक जीवंत संबंध का आधार बनती है तथा इन्सानी ज़िन्दगी में ईश्वर की भूमिका शिथिल, निष्क्रिय, नहीं मानी जाती। अपनी जीवन-चर्या के हर क्षण, हर पल, इन्सान को यह आभास, एहसास और विश्वास रहता है कि ईश्वर से उसका व्यावहारिक संबंध घनिष्ट है। ईश्वर हर पल उसके साथ है (क़ुरआन, ५०:१६)। ईश्वर उसके हर कर्म, कथन, आचार, व्यवहार की निगरानी व निरीक्षण कर रहा, उसे अंधेरे और एकांतवास में भी देख रहा है। वह एक स्वतंत्र प्राणी

नहीं, बल्कि ईश्वर के समक्ष अपने कामों का उत्तरदायी है और परलोक में ईश्वर उससे हर अच्छे-बुरे काम का हिसाब करेगा, फिर या तो उसे स्वर्ग प्रदान करेगा या नरक में डाल देगा।

ईश्वर के प्रति मनुष्यों के कर्तव्य क्या हैं? ईश्वर के अधिकारों का अदा करना। इन अधिकारों का सार कुछ इस प्रकार है—

- ईश्वर की पूजा-उपासना और इबादत की जाए।
- पूजा-उपासना सिर्फ ईश्वर ही की की जाए, किसी और की हरगिज़ नहीं। यह पूजा-उपासना क्या हो, कैसी हो, कैसे की जाए? यह मनुष्य स्वच्छंद रूप से अपनी पसन्द व नापसन्द और अपनी आसानी के अनुसार तय न करे, बल्कि यह स्वयं ईश्वरीय

आदेशों के अंतर्गत (जो ईशग्रंथ क़ुरआन में वर्णित हैं) और ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इसकी जिस प्रकार व्याख्या कर दी है (जो 'हदीसों' में उल्लिखित है) के अनुसार की जाए, ताकि पूजा-उपासना और उसकी पद्धति व सीमा में निश्चितता (□□□□□□□□□□) और अनुशासन (□□□□□□□□□□) रहे, उसमें भ्रामकता (□□□□□□□□□□) का समावेश न हो और एक व्यावहारिक आदर्श (□□□□ □□□□□) सदा सामने रहे।

- ज़िन्दगी के छोटे-बड़े हर मामले में ईश्वर का आज्ञापालन किया जाए (तथा ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का भी

आज्ञापालन, (क़ुरआन, ३:३२, १३२, ४:५९, ८:१, २०, ४६, २४:५४, ५६, ४७:३३, ५८:१३, ६४:१२, १६ इत्यादि)। इस आज्ञापालन का तात्पर्य यह है कि जीवन-संबंधी जितने भी नियम-क़ानून और आदेश-निर्देश क़ुरआन और हदीस तथा हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के आदर्श में मौजूद हैं उनका अनुपालन किया जाए। (ये आदेश-निर्देश जहां ईश्वर तथा ईशदूत, हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के प्रति कर्तव्यों से संबंधित हैं, वहीं मानव-अधिकार (हुक़ूक़-उल-इबाद) और जन-सेवा (ख़िदमते ख़ल्क़) से भी संबंधित हैं)।

ईश्वर के अधिकारों की अदायगी की अनिवार्यता इसलिए नहीं है कि इसमें ईश्वर का अपना कोई हित, कोई स्वार्थ,

कोई फायदा है। क़ुरआन (११२:२) में स्पष्ट कर दिया गया है कि ईश्वर की हस्ती अपने आप में स्वाश्रित व स्वाधारित है, किसी की मोहताज या किसी के आज्ञापालन व पूजा-उपासना की ज़रूरतमंद हरगिज़ नहीं है। ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के एक कथन के अनुसार 'समस्त संसार के सारे इन्सान ईश्वर की इबादत और उसका आज्ञापालन करें, तो भी उसका कोई अपना व्यक्तिगत लाभ नहीं, उसकी महानता, गौरव में तनिक भी वृद्धि न होगी। और पूरे विश्व के सारे इन्सान उसकी इबादत और आज्ञापालन छोड़ दें तो भी उसकी महानता, वैभव, गौरव और सत्ता में कोई कमी न आएगी।' वास्तव में ईश्वर की पूजा-उपासना और आज्ञापालन में स्वयं मनुष्य और मानवजाति का ही हित

है। यह विचारधारा और विश्वास मनुष्य के लिए, इस्लामी एकेश्वरवाद का ऐसा अनुपम व अद्वितीय पहलू है जो ग़ैर-इस्लाम (□□□-□□□□□) में कहीं भी नहीं पाया जाता। इसमें मानव-कल्याणकारिता की पराकाष्ठा (उच्चतम अवस्था) निहित है।

एकेश्वरवाद का मानव-जीवन पर प्रभाव

एकेश्वरवाद की वास्तविकता, ईश्वर के गुणों और ईश्वर के अधिकारों के सामंजस्य व समावेश से जो स्थिति (इस्लामी परिप्रेक्ष्य में) बनती है, उसका अवश्यंभावी परिणाम यह होना चाहिए कि विशुद्ध एकेश्वरवाद की अवधारणा मानव-जीवन पर अपना ऐसा प्रभाव डाले जो समाज के स्तर पर जीवन-व्यवस्था की ठोस ज़मीन पर स्पष्ट और क्रान्तिकारी प्रभाव डाले (न कि इन्सानों के

मन-मस्तिष्क, आत्मा, भावनाओं, श्रद्धाओं, विचारों और आध्यात्मिकता की दुनिया में ही सिमटी-सिकुड़ी पड़ी रहे)। यह इस्लामी अवधारणा मानव-जीवन पर जो अनेक और वृहद व व्यापक प्रभाव डालती है उनमें से कुछ, संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

- **चरित्र-निर्माण :** विशुद्ध एकेश्वरवाद की इस्लामी अवधारणा, इन्सान को उस नैतिकता से सुसज्जित करती और आध्यात्मिक बल व आत्मिक शक्ति प्रदान करती है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कमज़ोर और क्षतिग्रस्त नहीं होती क्योंकि उसके पीछे ईश्वरीय शक्ति का सहयोग काम कर रहा होता है। इस आत्मिक शक्ति से इन्सान को जो आत्म-बल और आत्म-विश्वास प्राप्त होता है वह

उसके चरित्र निर्माण में प्रभावी भूमिका निभाता है।

- **मानवीय मूल्य :** प्राकृतिक रूप से जो शाश्वत मानवीय मूल्य इन्सान की प्रवृत्ति का अंश तथा उसके व्यक्तित्व में रचे-बसे होते हैं लेकिन अनेक आंतरिक व वाह्य कारणों से क्षीण, जर्जर होकर विघटित व दोष युक्त होने लगते हैं, ईश्वर से संबंध की घनिष्टता उन्हें लगातार बहाल करती रहती है।

- **उत्तरदायित्व :** विकृत मानसिकता और त्रुटिपूर्ण सोच (लोभ-लालच, ईर्ष्या-द्वेष, हिर्स-हवस और स्वार्थ आदि) के प्रभाव से इन्सान जब कोई ग़लत काम, पाप-कर्म और अपराध आदि करने का इरादा करता है तो समाज और क़ानून-व्यवस्था के

समक्ष, उत्तरदायी (□□□□□□□□□□□□) और जवाबदेह (□□□□□□□□□□□) होने का एहसास उसे दुष्कर्म करने से रोक देता है। लेकिन समाज व क़ानून-व्यवस्था की पहुंच व पकड़ की सीमा व सामर्थ्य जहां समाप्त हो जाती है उससे आगे बढ़ जाने के बाद इन्सान किसी पकड़ से, जवाबदेही से, उत्तरदायित्व से या सज़ा के ख़ौफ़ से ख़ुद को परे और मुक्त पाता है तो बड़े-बड़े पाप, दुष्कर्म और अपराध कर गुज़रता है। यह दिन-प्रतिदिन का अनुभव है। इस चरण में पहुंचकर इन्सान को बुरे कामों से रोकने का काम 'विशुद्ध एकेश्वरवाद' की अवधारणा इस तरह करती है कि उसे परलोक में ईश्वर के समक्ष जवाबदेह और उत्तरदायी होने का, ईश्वर की पकड़

और सज़ा (नरक की भीषण यातना) का ख़ौफ़ दिलाती है।

- **मानव-सम्मान :** इन्सान प्रायः अपनी ही पहचान को भूल जाता है कि ब्रह्माण्ड में उसकी हैसियत व मक़ाम क्या है। वह पूरी सृष्टि में कितनी उच्च, श्रेष्ठ व सम्मानित कृति है। फिर वह ख़ुद भी बहुत निम्न स्तर तक गिर जाता और जाति, नस्ल, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय, रंग, भाषा और राष्ट्रीयता आदि के आधार पर दूसरे इन्सानों के सम्मान पर डाके डालता, उन्हें अपमानित करता, उन्हें अछूत और त्याज्य (□□□□□□□□□□□□) क़रार दे देता है। मानव-इतिहास मानव-सम्मान के ऐसे हनन से भरा हुआ है। इस्लाम की विशुद्ध एकेश्वरवादी

अवधारणा में इस घोर त्रासदी का समाधान निहित है। क़ुरआन (१७:७०) के अनुसार ईश्वर ने हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) की संतान (इन्सानों) को श्रेष्ठ व सम्मानित बनाया। इतना सम्मानित बनाया कि क़ुरआन ही के अनुसार (२:३४, ७:११, १७:६१, १८:५०) प्रथम मानव 'आदम' का सृजन करने के बाद ईश्वर ने, कुछ पहलुओं से इन्सान से भी श्रेष्ठ 'फ़रिश्तों' को हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) के समक्ष नत-मस्तक हो जाने का आदेश दिया था।

- **मानव-समानता :** कहने, लिखने और एलान व दावा करने की हद तक तो देशों के संविधानों में, अन्तर्राष्ट्रीय उद्घोषणाओं (□□□□□□□□□□□□□ □□□

□□□□□□□□□) में और आधुनिक समाजशास्त्र में सारे इन्सान बराबर हैं। लेकिन यह एक सर्वविदित सत्य है कि पूरी मानवजाति में व्यावहारिक स्तर पर करोड़ों इन्सान असमानता (□□-□□□□□□□□, □□□□□□□□□□□□□□□), शोषण (□□□□□□□□□□□□□), अन्याय (□□□□□□□□□□) और अत्याचार (□□□□□□□□□□□□) की चक्की में पिस रहे, असमानता की मार खा रहे हैं। इस्लाम की एकेश्वरवादी अवधारणा ही है जो मानव-समानता की मज़बूत आधारशिला प्रदान करती है (क़ुरआन, ४९:१३) तथा मानव-समानता की सही व्याख्या करती, उच्चतम मापदंड भी देती है।

- **धैर्य व संयम :** प्रतिकूल परिस्थितियों में, समस्याओं और चुनौतियों में, मुसीबत की घड़ियों में, सत्य मार्ग से विचलित कर देने वाले (□□□□□□□□□□□□) हालात में जब इन्सान मायूस, हताश (□□□□□□□□□□□) हो जाने, बाग़ी व उपद्रवी बन जाने, आत्महत्या कर लेने की स्थिति में आ जाता है और कोई चीज़ उसे सहारा देने वाली नहीं रह जाती तब उसे वह सहारा मिलता है जिसे विशुद्ध एकेश्वरवाद में अडिग विश्वास उसे प्रदान करता है (क़ुरआन, ९४:५,६, ३९:५३)।

उपसंहार

उपरिलिखित विवेचन व परीक्षण से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है कि एकेश्वरवाद के यथार्थ एवं शुद्धतम

प्रारूप—'विशुद्ध एकेश्वरवाद'—की इस्लामी अवधारणा का हमारे जीवन के हर क्षेत्र, हर विभाग, हर अंश से कितना घनिष्ठ, जीवंत, सर्वांगीण संबंध है। चाहे वह आत्मिक क्षेत्र हो या भौतिक, आध्यात्मिक हो या सांसारिक, वैयक्तिक हो या सामाजिक व सामूहिक। इस्लाम, मानवजाति के रू-ब-रू इसी का आहवाहक है। यही इस्लाम का केन्द्र-बिन्दु है, इस्लामी आचारसंहिता व जीवन-प्रणाली की धुरी (□□□□), इस्लामी जीवन-व्यवस्था की आधारशिला (□□□□□□□□□□ □□□□□), इस्लाम की आत्मा (□□□□□□) है।